कविताएँ

जगन्नाथ प्रसाद दास

कविताएँ

जगन्नाथ प्रसाद दास

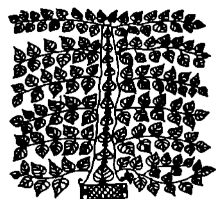
ଜଗନ୍ନାଥ ପ୍ରସାଦ ଦାସ

वागर्थ में कविता/
उड़िया

1

भारतीय साहित्य केन्द्र
वागर्थ

पन्द्रह कविताएँ/जगन्नाथ प्रसाद दास
भारत भवन न्यास के लिए
दयाप्रकाश सिन्हा, निदेशक भारत भवन द्वारा प्रकाशित
सम्पादन **मदन सोनी, प्रकाशन अधिकारी, भारत भवन**
सहयोग **प्रेमशंकर शुक्ल**
आकल्पन **हरचन्दन सिंह भट्टी**
कम्पोजिंग **कोरल कैलीग्राफर्स, भोपाल**
मुद्रण **भण्डारी आफ़सेट, भोपाल**



भारत भवन
शामला हिल्स, भोपाल - 462002 (म.प्र.)
फोन : 540239, 540398, 540353

क्रम



भारत भवन के भारतीय साहित्य केन्द्र 'वागर्थ' में भारतीय भाषाओं के शीर्षस्थानीय कवियों के काव्यपाठ की एक श्रृंखला जारी है। इसके अन्तर्गत कवि-मुख से मूल भाषा में काव्यपाठ के साथ-साथ उन कविताओं के हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत किये जाते हैं। इस श्रृंखला का मुख्य उद्देश्य भारत की अति प्राचीन और समृद्ध मौखिक परम्परा के पुनर्वास के साथ-साथ भारतीय भाषाओं की उत्कृष्ट सर्जना से हिन्दी पाठक-श्रोता का साक्षात्कार कराना है। एक ही कविता की यह द्विभाषायी प्रस्तुति दो भाषाओं के बीच ध्वनियों के संवाद-विवाद का एक विचारोत्तेजक और प्रीतिकर अनुभव रचती है। इसी के साथ विभिन्न भाषाओं की कविता के हिन्दी में अनुवाद का एक उद्यम भी इस प्रक्रिया में जारी है, जो आशा है, हिन्दी काव्य-संपदा को और समृद्ध करेगा। इस पुस्तिका के साथ हम काव्यपाठ के इन सत्रों में पढ़ी गयी कविताओं के प्रकाशन की श्रृंखला आरम्भ कर रहे हैं, ताकि श्रोताओं के साथ-साथ पाठक भी इनसे प्रतिश्रुत हो सकें।

24 अप्रैल 1992 को उक्त श्रृंखला में उड़िया के वरिष्ठ कवि श्री जगन्नाथ प्रसाद दास का काव्यपाठ हुआ था। इस काव्यपाठ में उनके द्वारा पढ़ी गयी उड़िया कविताओं के साथ उनके हिन्दी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत हैं। हमारे अनुरोध पर श्री शंकरलाल पुरोहित ने श्री दास की कविताओं पर एक निबन्ध लिखा है। वह भी बतौर भूमिका के यहाँ प्रकाशित है। आशा है कि यह निबन्ध हिन्दी पाठकों को श्री जगन्नाथ प्रसाद दास की कविताओं से साक्षात्कार कराने में सहायक होगा।

इस सामग्री के प्रकाशन के लिए हम कवि, अनुवादकों और निबन्ध लेखक के आभारी हैं।

दयाप्रकाश सिन्हा
निदेशक
भारत भवन

जगन्नाथ प्रसाद दास की कविता के आस-पास

शंकरलाल पुरोहित

जगन्नाथ प्रसाद दास से जब पहली बार कोई मिलता है तो बहुत थोड़े-से शब्द, चिर परिचित भंगिमाएँ और ढेर सारी गंभीरता। आप चार-पाँच मिनट में या तो अपनी बात खत्म कर डालें या फिर उनका कहना सुन लें। लंबी गप्पबाजी अथवा लंबा चौड़ा बयान उनके स्वभाव में ही नहीं आता। अगर उनकी बात समझ में नहीं आती, वे हूबहू अंग्रेजी में तर्जुमा कर देंगे, परंतु यह क्या? बात समझने के लिए भाषा थोड़े ही कोई गोरख धंधा है जो एक के बजाय दूसरा विकल्प सुझा दे और आप उसका अर्थ/आशय/वाक्य पकड़ लें। जगन्नाथ प्रसाद में शब्द ही शब्द नहीं होते। वहाँ रंग है, वातावरण है, आकार है, भंगिमा है, भाषा तो मात्र एक संकेतात्मक जामा है। इसी को सब कुछ मान लेने पर लोग पूरा संकलन (जैसे **प्रथम पुरुष**) पढ़ कर बेचैन हो कर पूछते हैं- जे.पी. कवि हैं? यह कैसा कवि है? क्योंकि जे.पी. में परंपरागत कवि की तर्ज नहीं मिलती, और कुछ लोग बौखला उठते हैं। जो हो यह असहमति का स्वर मिटता नहीं, उनके निश्चित मानदंड वही बने रहते हैं, जे.पी. की कविता तो एक दूसरे रास्ते से आगे निकल जाती है। उनमें बड़बोलापन नहीं होता, अतः इसकी गूंज देर तक रहती है, कविता का उच्चार बहुत तीव्र नहीं हो पाता। आक्रामक नहीं है अतः चुभती नहीं, काटती नहीं, बोझिल है, अतः पद-पद पर अपनी उपस्थिति का अहसास कराती रहती है।

जे.पी. का पहला संकलन एक दशक के बाद प्रकाशित हुआ। अन्यथा समय का हिसाब करें तो वे रमाकांत रथ के साथ कविता के क्षेत्र में आये थे। **प्रथम पुरुष** के पहले भी उनकी एक पहचान बननी शुरू हो गयी थी। जे.पी. ने कैनवास, तूली और रंगों को मिलाकर कई-कई प्रयोग किये। परंतु वह सब भी किसी प्रकार 'उड़िया उड़िया' जैसा नहीं लगा। जे.पी. में यह आंचलिक रंग नहीं मिलेगा, अतः जे.पी. की गिनती उड़िया चित्रकारों में नहीं हो पाती। एक प्रकार से तूली चलाना छोड़ दिया। कलम-कागज सम्हाला। अब भी वही बात। भुवनेश्वर में कवियों की गिनती होती तो उनका नाम कहीं नहीं होता। नितांत चकाचौंध रहित इन कविताओं को इनके स्तर पर देखें तब तो ये कविता दिखेंगी, वरना महाकाव्य के मानदंड अथवा लंबी कविता की लय और तनाव जे.पी. में नहीं मिलेंगे। इतना बड़ा युग-सचेतन और परिवेश-सतर्क व्यक्ति लिख रहा है तो सब से पहले उसकी दृष्टि को हृदयंगम करना पड़ता है।

प्रथम पुरुष का कवि आज जो उच्चारण कर रहा है उसके पीछे अनुभव है या नहीं इस की बहस अनावश्यक है। परंतु यह अनुभूति की कविता है। आदमी अपने आसपास जो कुछ देखता है वह इतना अधिक निरुत्ताप है, **प्रथम पुरुष** में सारे संपर्कों की तह में झाँक आया है। अब वह किसी को न कोई नाम दे पाता है, न कुछ व्यक्तिगत रह जाता है। अन्तरंग जैसा तो कुछ रह ही नहीं गया, आत्मीयता का प्रतीक कोई चुंबन भी नहीं। उसके लिए शब्द ही नहीं उनकी भंगिमा कितनी बदल जाती है :

अनेकानेक आते हैं मेरे पास
मेरे होंठों से होंठ मिलते,
मेरी देह से देह मिलती
अनेक बातें, हँसी सुबह-शाम
अनेक पुनरावृत्तियाँ अन्य अतीतों की
आज अगर मेरे कान में होंठ रख
चुपके से कोई कहे
कुछ शब्द होंगे, कुछ गोपनीय नहीं
मेरे मन में कोई प्रतिध्वनि नहीं उन बातों की
बस होंठ भर हैं वे होंठ, देह मात्र हैं वे देह
कोई गोपनीय नहीं
वे मेरे नितांत आत्मीय नहीं हैं।
वे चेहरे सिर्फ सिर्फ चेहरे हैं मुखौटे हैं

उनके नाम सिर्फ नाम : छद्मनाम
उनकी बातें सिर्फ बातें : अभिनय
वे सब केवल होंठ देह : बर्फ और पत्थर।

'गोपनीय' कविता का यह अंश केवल सर्वनाम रखता है। संपर्कों को परिभाषित करने। इस अभिनयपूर्ण, छलनापूर्ण स्थिति में कहीं कोई उत्ताप, आत्मीयता, व्यक्तिगत अंतरंगता की कोई संभावना ही नहीं। यही संपर्कहीनता का दंशन पूरे संकलन में छाया है। इसी में उपजती है निस्संगता। वे सब तो इस भयंकर घड़ी में भयभीत होकर चले जाते हैं, मैं रह जाता हूँ अकेला, निपट अकेला। इस क्षण उसे घेर लेते हैं अतीत के सारे अनुभव, सारी स्मृतियाँ जो बिजली की तरह कौंध जाते हैं। वे सारे चेहरे, सारी इच्छाएँ और देह दीवारों की तरह धर लेते हैं, मुक्ति नहीं मिल सकती। अब वह कई मुखौटे पहनना शुरू करता है। रात-दिन सुबह-सांझ, क्षणिक आनन्द, ट्रेजेडी के अंतिम सीन, अतिथि, सहयात्री, पूर्व प्रेमिका और उसके पति, सम्राट, सैनिक, वेश्या, जादूगर, मृतक की शवयात्रा, निर्वासित आकाश, अवाक् सुबह, प्रेम, प्रतिरक्षा, प्रताड़ना...। कितने लोग और कितनी स्थितियाँ हैं– आज के जीवन के हर पहलू पर कवि को मुखौटा बदलने में? यही है अपने समय का रचनात्मक संदर्भ। यहाँ कोई आक्रोश नहीं, कोई किसी को धिक्कारता नहीं। वस्तु में मनुष्य की परिणति का तीखा अहसास है। तभी तो कवि आँखहीन अंधकार और छायाहीन अंधकार देखता है। लोग बाग कहीं नहीं, सागर तट पर कुछ कदमों के चिह्न हैं, भोर होती है, फिर एक रात की प्रतीक्षा में। यह निरुद्विग्न समय और अनिश्चित सत्ता का मंद स्वर **प्रथम पुरुष** के उच्चार में सुनाई दे रहा है।

यहीं से फिर संवेदनशीलता का विस्तार होता है। प्रेम का जो रूपांतरण हुआ है वह प्राणों को मृत्यु के द्वार का दूसरा नाम बन जाता है। समय के केन्द्र में स्थित मानवीय सचेतनता अनुभवों को मृत्यु सचेतन कर देती है। यह भाव-बोध किसी विभीषिका अथवा विकरालता को परिवेषित नहीं करता। वरन् इस स्तर पर भी हर शब्द शीतल, शांत और निथर चेतना की व्यंजक स्थिति है। जीवन और मृत्यु का अंतर वैसे ही है जैसे किसी एक धरातल पर अतीत, वर्तमान और भविष्य का रैखिक चित्रण कर दिया गया हो। परंतु उनका एक और संकलन अपनी-अपनी निर्जनता में जगन्नाथ प्रसाद को और भी एकाकीपन की अनुभूति होती है। संपर्कों की जो शीतलता (अथवा निरुत्तापता, निःशब्दता) शुरू में मिलती है वह मिटती नहीं और विस्तृत होती है। एकाकीपन मानो पूरी तरह आदमी की नियति बन गया है। अतीत तो असहाय है, वर्तमान संदिग्ध और भविष्य की संभावनाएँ भी क्षयिष्णु हैं। हम सब अपनी-अपनी जगह इतने आत्मरुद्ध, निबद्ध हैं कि दूसरे से संपर्क रह ही नहीं गया। परंतु यह संपर्कों की इस स्थिति पर उनका अन्वेषण अनवरत जारी रहता है। यह कोफ्त भरी स्थिति, जिसे कवि घने अंधकार, घने अरण्य में निर्वासित कहता है। क्लांत और निस्संग।

मानव की उससे उबरने की तलाश जारी रहती है- अंधकार से उजाले की ओर यात्रा चल रही है। इस प्रकार जगन्नाथ प्रसाद की कविता में स्थिरता नहीं है। काव्यानुभव का क्षितिज विस्तृत और विस्तृत होता जाता है। तलाश जरूर है, भटकना कहीं नहीं मिलता। यह तलाश चेतना के एक-दूसरे प्रदेश में चल रही है, इसका समय भी एक तरह से कुछ और ही है। यह अनुभव शहरी अनुभव है, यहां मन की ऊहापोह तनाव की भाषा में व्यक्त होती है। शुरू से अंत तक बिना किसी विराम (चिह्न) के अनवरत चलती रहती है। मोड़ पर मोड़, मुकाम पर मुकाम मिलते चलते हैं। रुकावट या बाधा नहीं आती।

जगन्नाथ की शब्दावली अथवा उनके चित्र दृश्य बहुत जल्दी गलत संदर्भों के बीच ले जा कर खड़ा कर देते हैं। क्योंकि वहाँ नहीं मिलते वे जिन परिणामों के हम अभ्यस्त हो गये हैं। उदाहरण के लिए कुछ शब्द मनोविज्ञान की बजाय धर्मशास्त्र से लिए हैं। दार्शनिक शब्दावली का प्रयोग अचानक चौंकाने वाला है। उसी प्रकार कुछ स्थितियाँ हैं जो अलगाव, मृत्यु और पुनरावृत्ति की शिकार हैं। वहाँ देह, होंठ, आँख, केश होते हुए भी ऐन्द्रियता नहीं है। शब्द सीमित हैं, सुपरिचित हैं, परंतु शब्दों की ध्वनि नहीं है, रूप में गद्यमयता लगने पर भी लय और गति ऐसी कि अपनी परिचित भंगिमा छोड़नी पड़ती है पाठक को। यह कविता में क्रांति रातों रात नहीं आती, जीवन झरने की तरह मोड़ मिल जाते हैं। भाषा भी सहज ही रूपांतरित हो रही है।

हाल ही में प्रकाशित संकलन आह्निक में जगन्नाथ प्रसाद दास की दृष्टि उतनी आत्मकेंद्रित नहीं। महाभारत और गीतगोविंद की बात करते हैं, गांधी, गोपबंधु उनकी कविता में आ गये हैं। उनकी दृष्टि और चिंतन का क्षितिज कटक से भुवनेश्वर और पुरी तथा इसके आगे बालियापाल (जहाँ मिसाइल परीक्षण केन्द्र स्थापित करने के लिए हजारों परिवार विस्थापित हो रहे हैं और अभूतपूर्व मानवीय समस्या उत्पन्न हो गयी है) और हिरोशिमा तक विस्तृत हो गया है। वस्तु जगत की सचाइयाँ उजागर हो रही हैं। अतः कवि तटस्थ और निरुद्विग्न नहीं रह पाता। 'क्रांति आ रही है' जैसी कविता जगन्नाथ प्रसाद की में घुमड़ रहे नपुंसक मौन, उपेक्षा भाव को समझ और स्थान की चिंता से जोड़ देता है। वह एक बारगी इस सारे सामाजिक राजनैतिक छद्म से निकल कर उंगली उठा रहा है। जगन्नाथ प्रसाद कविता में यह मोड़ स्वयं उनकी उद्घोषणा में भी मिल जाता है। स्वीकारोक्ति का यह नया स्तर है, जिन्हें उनकी प्रारंभिक कविता में शिकायत थी अब वे भी समझ जायेंगे कि एक कविता में सब कुछ नहीं होता :

मुरझा गये संपर्कों के पश्चात्ताप में
वह आयेगी आत्मीयता का हाथ बढ़ाकर
बदल गयी पारस्परिकता सहेज कर
संशय और अविश्वास के श्मशान पर
समझ के संवेदनशील फूल खिला कर।

कविता को कविता ही रहने दें, आलोचकीय धारा, दर्शन, वाद जैसे अलग-अलग दड़वों में खींच कर कवि और कविता के साथ अन्याय किया जाना बंद होना चाहिये। ऐसा ही जगन्नाथ प्रसाद के साथ किया जा रहा है।

जगन्नाथ प्रसाद दास ने स्वयं नई कविता के बारे में कह दिया है :

मेरी अगली कविता आयेगी
हाथ में तीखी शब्द माला लिये
निर्विरोध निःशंक सहज और स्वतः स्फूर्त
मात्रा और छंद के बंधन टाल कर
सादे कागज के स्वायत्त साम्राज्य में
जीने के अधिकारों को स्वतः सिद्ध कर।

कवि की आवाज उसकी कविता में ही गूंजती है। यहाँ तो वह स्पष्ट शंखध्वनि की तरह उच्चारित कर रहा है। कवि के कविता के मानदंड, कवि का पक्ष, उसका कथ्य और दृष्टिकोण सब कुछ स्पष्ट है। कवि में कोई छद्म नहीं। यह और बात है कि आप उसके साथ सहमत हैं या नहीं, आप के मानदंड, दृष्टिकोण जगन्नाथ प्रसाद से एक मेक हैं या नहीं। कोई दो कवि इकसार नहीं हो सकते। फिर जगन्नाथ प्रसाद की कविता को कविता कहने में हमें कुंठा क्यों हो रही है?

पन्द्रह कविताएँ

तावीज

कभी-कभी इच्छा होती
मेरा यह जीवन जिस परिधि का केन्द्र है
बाहर जाकर उस परिधि के, देखता मैं
कैसा वह देश, और मैं लेकर संकल्प
जाता उस वृत्त के बाहर, गाड़ी का
खोल कर दरवाजा उतरता चौकसी से

अद्भुत वह देश, शून्य महाशून्य
जैसे मेरे जीवन की असफल दुपहरी,
आकाश में घूमती थी छाया, सूर्य और
चंद्र सा निर्दिष्ट और निश्चित, समय सिमट कर
हो गया एक क्षण

मैंने देखा पहली बार यह फर्क
सूर्य के उगने और अस्त होने में
जैसा है अन्तर प्रेम करने और
भूल जाने में देखने और होने में
मैंने देखी अनेक रोशनियाँ,
वे मुझे घेर गईं,
बींध दिया मुझे उन्होंने लोहित और
नारंगी रंग से, काली-काली छाया
जितनी थी अंतरिक्ष में
निहत हुई, फिर हुई
अन्तर्ध्यान उस शून्यता में
पहली बार पूछा मैंने अपने आपसे
कौन हूँ मैं, मेरा रास्ता किधर गया-
यह सीढ़ी नीचे को या ऊपर को, साक्षी है कौन,
मुकुट कहाँ, चेष्टा की समझ ने
चुप-चुप फुसफुसी आकाश में तारों की,
हवा के हाथ की रेखाओं का अर्थ,
कौन सा संदेश फिर समुद्र के बालू में
जो चित्र-लिपि उसमें, और मेरी इस देह के पिंजर में
चिड़िया जो चीखती, कौन सा है अर्थ वहाँ ?

କବଚ

କେବେ କେବେ ଇଚ୍ଛା ହୁଏ
ଏ ମୋର ଜୀବନ ଯେଉଁ ପରିଧିର କେନ୍ଦ୍ର
ସେ ପରିଧି ବାହାରକୁ ଯାଇ ମୁଁ ଦେଖନ୍ତି
କି ଭଳି ସେ ଦେଶ
ଯାଇ ମୁଁ ସଂକଳ୍ପ ନେଇ
ସେ ବୃତ୍ତର ବାହାରକୁ ଯାଏ
ଗାଡ଼ିର କବାଟ ଖୋଲି
ସତର୍କେ ଦେଇ ଓହ୍ଲାଏ

ସେ ଏକ ଅଦ୍ଭୁତ ଦେଶ
ଶୂନ୍ୟ ମହାଶୂନ୍ୟ
ଯେମିତି ମୋ ଜୀବନର ଅସଫଳ ମଧ୍ୟାହ୍ନ
ଆକାଶରେ ଘୂରୁଥିଲା ଛାଇ ଆଉ
ସୂର୍ଯ୍ୟ ଭଳି ଚନ୍ଦ୍ର ଭଳି ନିର୍ଦ୍ଦିଷ୍ଟ ନିଶ୍ଚିତ
ସମୟ ସଂକୁଚିତ ହୋଇ
ହୋଇଗଲା ଗୋଟିଏ ମୁହୂର୍ତ୍ତ

ମୁଁ ଦେଖିଲି ପ୍ରଥମ ଥର ପାର୍ଥକ୍ୟ
ସୂର୍ଯ୍ୟର ଉଦୟ ଓ ଅସ୍ତମିତ ହେବାରେ
ଯେଉଁ ଭଳି ପାର୍ଥକ୍ୟ ଥାଏ
ଭଲ ପାଇବା ଓ ଭୁଲିଯିବା
ଦେଖିବା ଓ ହେବା ମଧ୍ୟରେ
ମୁଁ ଦେଖିଲି ଅନେକ ଆଲୋକ
ସେମାନେ ଘେରିଲେ, ମୋତେ ରଙ୍ଗେଇଲେ
ଲୋହିତ ଓ କମଳା ରଙ୍ଗରେ
କଳାକଳା ଛାଇମାନେ
ଯେତେ ଥିଲେ ଅନ୍ତରୀକ୍ଷ ଭିତରେ

अनेकों नपुंसक अंतरिक्ष आ
खोजें मुझमें ठिकाना
मेरा भर गया मन महाशून्यता से
मेरी छायाएँ हुईं और भी लंबी
न थे वे प्रेत, फिर भी मैं
डर गया उनसे, लौट आया
सहम कर, मेरी गाड़ी का दरवाजा
बंद किया, काँच और इस्पात की दीवार
खड़ी कर, हटा दिया दूर : आकाश, हवा
और समुद्र की रेत को,
और अनेकों प्रश्नों को
फिर खोजने लगा ताबीज
अखबार, सिगरेट के डिब्बे और रेजगारी में।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

मुखौटा

मैं कई मुखौटे रखे हूँ : दिन, रात,
साँझ के लिए, क्षणिक आनन्द के लिए,
वियोगान्त नाटक के अन्तिम अंक के लिए,
अतिथि और सहयात्री, एकदा प्रेयसी
और उसके पति के लिए, सम्राट, सैनिक, वेश्या,
जादूगर, शव और जुलूस के लिए,
निर्वासित आकाश और अवाक् भोर,
प्रेम के लिए, प्रतिरक्षा, प्रतारणा के लिए,
बहुविध मुखौटे रखे पलकों में, तरह-तरह के
छद्मवेश धारण करता हूँ
जीवन की हर अवस्था में

मैं ऐसा मुखौटा खोजता था, उसकी आँख की
हल्की नीलिमा में; जितनी कुमारी लड़कियाँ, सब मेरे
वश में होंगी, मेरे होठों की हल्की सी दृढ़ता देख
शत्रु हार मान लेंगे, एक ही कटाक्ष में
आकाश के पक्षी आयेंगे मेरे पिंजरे में
मैं कहूँगा रात और सूर्य अस्त हो जायगा

ମୁଖା

ମୁଁ ଅନେକ ମୁଖା ରଖିଛି
ଦିନ ରାତି ସଂଜ [illegible] ପାଇଁ
କ୍ଷଣିକ ଆନନ୍ଦ ପାଇଁ
ବିୟୋଗାନ୍ତ ନାଟକ ଶେଷ ଅଙ୍କ ପାଇଁ
ଅତିଥି ଓ ସହଯାତ୍ରୀ ଏକଦା ପ୍ରେୟସୀ
ଏବଂ ତା ସ୍ୱାମୀ ପାଇଁ
ସମ୍ରାଟ ସୈନିକ ବେଶ୍ୟା ଯାଦୁକର
ଶବ ଶୋଭାଯାତ୍ରା ପାଇଁ
ନିର୍ବାସିତ ଆକାଶ ଓ ଅବାକ ସକାଳ
ପ୍ରେମ ପାଇଁ ପ୍ରତୀକ୍ଷା ପ୍ରତାରଣା ପାଇଁ
ବହୁବିଧ ମୁଖା ରଖି ଆଖି ପତାରେ
ଭିନ୍ନ ଭିନ୍ନ ଛଦ୍ମବେଶ ଧାରଣ କରୁଛି
ଜୀବନର ପ୍ରତି ଅବସ୍ଥାରେ

ମୁଁ ଖୋଜେ ମୁଖା ଆଖିରେ
[illegible] ହାଲୁକା ନୀଳିମାରେ
ଯେତିକି କୁମାରୀ ଝିଅ
ସବୁ, ମୋ ଅଧୀନ ହେବେ
ମୋ ଓଠର [illegible] ଦେଖି
ଶତ୍ରୁମାନେ ହାର ମାନିବେ
ଗୋଟାଏ କଟାକ୍ଷରେ
ଆକାଶର ପକ୍ଷୀ ଆସିବେ ମୋ ପଞ୍ଜୁରୀକୁ
ମୁଁ କହିବି ରାତି ଓ ସୂର୍ଯ୍ୟ ଅସ୍ତ ଯିବ
ସେ ମୁଖା ମିଳିଲା ନାହିଁ
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

वह मुखौटा मिला नहीं, मेरे सारे मुखौटे
छोटे-छोटे विस्मय मात्र हैं, एकदम मामूली हँसी
उदासीन आनन्द और क्लीव अभिमान, क्षीण
आर्तनाद, नपुंसक रोष, मेरा मुखौटा
सामान्य प्रेम और एकदम साधारण विरह मात्र
उस मुखौटे को पहन अतिथि सत्कार करता हूँ
मत्र पढ़ता हूँ, पत्नी और प्रेमिका को प्रेम करता हूँ
आकाश से कभी-कभी करता हूँ बात, तारों की ओर देखता हूँ
और आदमियों की भीड़ में खो जाता हूँ सहज ही

मेरी उम्र बढ़ जाती है, एक मुखौटे से सिर्फ
दूसरे मुखौटे तक, एक छलावे से दूसरे छलावे तक
छद्मवेश के पीछे से कोई-कोई चेष्टा करते हैं
मुझे पहचानने की, और कोई-कोई पहचान कर
अनजान बन जाते, कभी-कभी यदि मुझे लगता है
मेरा परिचय-पत्र खो गया, मैं स्वयं को
देखने की चेष्टा करता हूँ, दीवार पर देखता हूँ
पंक्ति-पंक्ति मुखौटे और इधर-उधर खाली टूटे-फूटे काँच
दर्पण से प्रश्न करना भी बेकार है।

[illegible]

वापसी

घर छोड़ निकलते समय सोचा था पहले
आकाश से लूँगा कुछ रंग और रोशनी
सूर्य से उत्ताप, मेघ से चीख
अरण्य से रोमांच और शून्य से कुछ अभिज्ञता।

न मिला तो सोचा; आकाश से कुछ आशा,
सूर्य से शपथ और मेघ से सपनों की सामग्री
शून्य से अपने लिए कुछ विस्मय
और पथ के लिए लूँगा केवल पवन से पाथेय

खो गया पथ मेरा, निरुपाय प्रत्यावर्त्तन में
अब बैठा सोचता हूँ अन्याय और अविचार,
भाग्य गाथा, आज मेरी हथेली की
रेखायें देख, एक निराशा से
दूसरी की मापता हूँ दूरी

जीवन की सीमाबद्ध योजना में अब
सूर्य और आकाश का स्थान नहीं
प्रतीक और अर्थ उसके, पथ और पाथेय सब
हो गये एकाकार जीवन के सहज सूत्र में,
समय और उम्र के साथ लिखा-पढ़ी हुई बेशुमार
लड़ने और हारने के क्षण भी भूला दिये

आज जब कभी मुँह-अँधेरे
वह पुरानी इच्छा मेरी जागती है अकस्मात
हम दोनों घर लौट आते हैं
काला और गोपनीय सत्य सा प्रिय मेरा
कुत्ता और मैं, स्वस्ति की साँस ले मैं
दरवाजा खोलता हूँ, जम्हाई ले अनासक्त
सम्मति से
कुत्ता अपना मुंह हिला देता है

[illegible]

कुछ चेहरे

कुछ चेहरे भोर के तारों की तरह
बहुत ऊपर रह कर
नीचे टिमटिमाते मेरी ओर
कुछ अनुकंपा और कुछ करुणा
झर जाती आकाश से
अयाचित शीत और ओस कण सी

और कुछ चेहरे रंगीन गुब्बारे से
फूल कर परित्यक्त पलंग पर
सुनसान और उमस भरी दुपहर में मुझे पुकारते,
चिढ़ाते, और व्यंग करते
मेरे खो गये पौरुष पर

कुछ चेहरे पहन कर मुखौटे कई
श्मशान के तिमुहे चौराहे पर निझूम रात में
हवा से साँय-साँय कर रोते
झाऊ वन की ओट में रह मुझे डराते कई बार

सादे और करुण कुछ चेहरे
अपनी सूनी आँखों से
मेरी आँखों में देखते जरा से आश्रय के लिए

फिर पूछते मुझसे किस रास्ते
जा सकते निरापद उत्तर की ओर
और कई चेहरे मेरे इन्द्रजाल घर के
चारों ओर आईने की दीवार से देखते हैं मुझे
अनेक आँखों और कई तरह के चेहरों से

କିଛି ମୁହଁ

कोई अत्यंत अन्तरंग, तो कोई बिलकुल अनजान
जाने भी अनजाने हो जाते हैं उस चेहरों की भीड़ में
कुछ चेहरों को पहचान कर भी इन्कार कर देता पहचानने से
जरा सा आश्वस्त होता, खुश होता,
डर जाता, हँस देता तनिक, अनजान ही मेरी आँख के
आँसू और अवसन्न स्नायु के दबाव से
चेहरे धुँधला जाते और हो जाते लुप्त।
अनुभव मिट जाते, फीके पड़ जाते चेहरे,
रह जाती सिर्फ यंत्रणा,
कुछ वर्षा, कुछ रास्ता और कुछ निर्जनता।

देवी

तुम आविर्भूत होती निशार्द्ध के शून्य क्षणों में
अधिष्ठात्री देवी तुम जितनी मेरी गोपनीय कामनाएँ
और मेरी देह के रक्त मांस स्नायु की
तुम्हारा सिंहासन मेरी निरुपाय इच्छाएँ
तुम्हारा मन्दिर स्मृति-स्तंभ मेरी सारी पराजित आशाओं का
दुःस्वप्न के किसी भयानक क्षण में
तुम्हारी स्थापना होती
तुम्हारी पूजा होती शहर की किसी निषिद्ध गली में
तुम्हारे स्तव गूँज उठते फिर
गुलामों के बाजार की नीलाम की बोली में

आज तुम्हारी प्रतीक्षा की शेष रात्रि;
नायक निहत हुआ नाटक के अंतिम अंक में,
परिचित प्रेमी तुम्हारे सब हुए पलातक
मन्दिर में पुजारी नहीं कोई, न सागर में लहरें, आकाश में
हँसी या चाँदनी कुछ भी नहीं;
मन्दिर बड़ा सूना;
आज सब कुछ चुपचाप है
इस रात में कोई भी नहीं,
तुम्हारी प्रतीक्षा में तुम्हारे प्रवेशद्वार पर देता है पहरा,
देखो, यहाँ मैं अकेला तुम्हारा अन्तिम सामुराई

मृतकों से मन्त्रणा शेष हो जाय तुम्हारी
आओ छमछम चाँदी के घुँघरू बाँध आज
तुम मेरे स्वप्न में

ଦେବୀ

ତୁମେ ଆବିର୍ଭୂତ ହୁଅ ନିଶାର୍ଦ୍ଧର ଶୂନ୍ୟ ମୁହୂର୍ତ୍ତରେ
ଅଧିଷ୍ଠାତ୍ରୀ ଦେବୀ ତୁମେ
ମୋର ଯେତେ ଗୋପନୀୟ କାମନା
ଓ ମୋ ଦେହର ରକ୍ତ ମାଂସ ସ୍ନାୟୁମାନଙ୍କର
ତୁମ ସିଂହାସନ ମୋର ନିରୂପାୟ ଇଚ୍ଛା
ଆଉ ତୁମର ମନ୍ଦିର
ସ୍ମୃତି ସ୍ତମ୍ଭ ମୋର ଯେତେ ପରାଜିତ ଆଶାମାନଙ୍କର
ତୁମର ସ୍ଥାପନା ହୁଏ
ଦୁଃସ୍ୱପ୍ନର ଏବଂ ଏକ ଭୟାର୍ତ୍ତ କ୍ଷଣରେ
ତୁମ ପୂଜା ହୋଇଥାଏ ସହରର ନିଷିଦ୍ଧ ଗଳିରେ
ତୁମର ସ୍ତବ, ଗୁଞ୍ଜି ଉଠେ ପୁଣି
ଗୋଲାମମାନଙ୍କ ବଜାରର ନିଲାମ ଡାକରେ

ଆଜି ତୁମ ପ୍ରତୀକ୍ଷାର ଶେଷ ରାତି
ନାୟକ ହେଲା ହତ ନାଟକ ଶେଷ ଅଙ୍କରେ
ତୁମର ପରିଚିତ ପ୍ରେମୀ ସମସ୍ତେ ପଳାତକ
ଏବେ ମନ୍ଦିରେ ପୂଜକ
ସାଗରରେ ତରଙ୍ଗ ନାହିଁ,
ଆକାଶରେ ହସ ନାହିଁ
ଆକାଶରେ ହସ ଓ ଜହ୍ନରାତି
କିଛି ଆଉ ଅବଶିଷ୍ଟ ନାହିଁ
ମନ୍ଦିରର ବଡ଼ ଶାନ୍ତି ଆଜି ସବୁ ଚୁପଚାପ
ଏ ରାତିରେ କେହି ଆଉ ନାହିଁ
ତୁମ ପ୍ରତୀକ୍ଷାରେ ତୁମ ପ୍ରବେଶର
ସିଂହଦ୍ୱାର ପହରା ଦେଉଛି
ଏଠାରେ ଏକାକୀ ଏକା
ମୁଁ ତୁମର ଶେଷ ସାମୁରାଇ

ମୃତକମାନଙ୍କ ସହିତ ତୁମ ମନ୍ତ୍ରଣା ଶେଷ ହେଉ
ଆସ ଆଜି ଝୁମୁଝୁମୁ

विलोप हो जाय आज सब कुछ,
मन्दिर यह धूल में मिल जाय,
रात सारी जल जाय देह के दहन से
सब आवृत्त हो जाय रूप, वर्ण और स्वर के अंधकार में।
तुम्हारा हाथ बन कर आक्टोपस मुझे मसल दे
तुम्हारे पाद बन कर यूप काठ मुझे बंद कर लें
छिल जायें मेरे हाथ की दस पंखुड़ियाँ
तुम्हारी स्तन के कैक्टस से, तुम्हारी देह
बन जाय भुरभुरी बालू
और निगल जाय मुझे।

सभी कविताएँ **प्रथम पुरुष** से। उड़िया से अनुवाद : **शंकरलाल पुरोहित**

शाम ठीक छः बजे

तुमने वायदा किया था
ठीक छः बजे मुलाकात का
शाम के ठीक छः बजे
और हम अकेले
हम दोनों   इस तरह
शहर की सीमा पर
उस दिन की शाम होगी
सिर्फ हमारे लिए
शहर उस दिन होगा पूरा बंद
और समय रुक गया होगा
हमारे लिए ठीक छः बजे

तुम कभी गयी थीं
समुद्र तट पर किसी के साथ
समुद्र में सूरज डूब गया
मत्स्यकन्यायें डर गईं
और दूर का जहाज जाकर
रुक गया बीच समुद्र में
समुद्र का सारा पानी
जल उठा आग जैसा
और रक्त जैसा
लाल-लाल हो गया
कौन ले गया चुराकर समय को मेरे
यह सब अनर्थ
हुआ किसके लिए
बीमार के बिस्तर पर मेरी
सुबह से शाम
और शाम से सुबह तक
मेरी नींद में स्वप्न नहीं
स्मृति नहीं इच्छा नहीं
और नहीं है प्रतिश्रुति

अब भी तो साँझ होगी
तुम होगी तुम्हारे हृदय में

[illegible]

कितने चुप सबेरों की धूप होगी
दोपहर की पीड़ा होगी
तुम्हारे दो हाथों में
सारी देह में होगी
अमावस की रात का रहस्य
आँखों में तुम्हारी होगी
उत्तेजना ट्रैफिक की बत्ती की
तुम क्या ढूँढोगी मुझे
अकेले में इस तरह की शाम को
बिखरे हुए बिस्तर पर
आँचल में बालों में
हाथ रखकर अपनी
छाती पर फिर

फिर एक बार
साँझ के लिए यज्ञ होगा
युद्ध होंगे
खून खराबे होंगे
प्रेमी के हाथों में छुरी
आर्तनाद नायिका के होठों पर
मौत होगी
फिर इस साँझ के लिए
पुनर्जन्म होंगे
कितने मान-अभिमान
और प्रतिश्रुति साथ मरने की
प्रेम की जयंती और वर्षगाँठ पर
कुछ इच्छा पूरी होगी
और कुछ असंपूर्ण रहेगी
तुमने वायदा किया था
हम दोनों मिलेंगे ठीक छः बजे
यह मानो आखिरी दिन हो जीवन का
ध्वंस और विलय होगी पृथ्वी की
आज की इस शाम को
कल और मुक्ति नहीं
निश्चित ही जल जायेंगे
सारे शीत और वसंत
कल की धूप में

[illegible]

तुमने वायदा किया था
ठीक छः बजे मिलने का
शाम के ठीक छः बजे
और हम दोनों निर्जन साँझ में
हमारे लिए देखो लेकिन
शहर में हड़ताल
साइरन प्रदर्शन
और जुलूस
आसमान किस तरह
देखो लाल हो गया
निषेध आज्ञा
देखो जारी हो गयी हमारे नाम

शहर की सीमा पर
आज असंभव लोगों की भीड़
दोपहर की घड़ियाँ
सब पूरी तरह बंद
केवल तुम और मैं
शाम के ठीक छः बजे
और शहर की आश्चर्यचकित जनता

स्वयं को खोजते हुए

स्वयं को खोजते हुए
किसी दिन
एक अनोखे पल में
अचानक तुमसे मेरी भेंट होगी
एकदम अचानक
मेरे बहुत करीब
मात्र प्रतीक की तरह
मूर्तिवत् मेरे सामने होगी तुम
रात गहराई नहीं होगी
मरघट की निस्तब्धता
भंग हो जायेगी आसानी से
तुम्हारे अभाव और सान्निध्य का
काल्पनिक व्यवधान भी और नहीं रहेगा
अंत होगा मेरी सारी साधना
और संधानों का आश्चर्यजनक रूप से

सब छिन्न-भिन्न होगा
टूटे बिखरे होंगे
परत दर परत धूल मकड़ी के जाले
आकाश सिमट जायेगा दीवारों पर
और घर भरा होगा पुराने कागज
और चिट्ठियों के पुलिंदों से
मेरे पैर अवश, मेरे हाथ अवसन्न
और देह होगी पक्षाघात ग्रस्त
मेरे हृदय में सुमेरु की ठंडक
माथे पर रेगिस्तान की जलन
चादर पर ताजा रक्त की बूँदें
और साँस होगी क्षीण आखिरी पहर में
तुम लेकिन मूर्तिवत् मेरे पास होगी
मेरी संपूर्ण सत्ता में
संगमरमर की देह तुम्हारी रखकर
मेरे निरासक्त बिस्तर पर

ନିଜକୁ ଖୋଜି ଖୋଜି

[illegible]

[illegible]

हर साँस में होगा तूफ़ान
हर स्पर्श में बिजली
होंठ होंगे ज्वालामुखी
प्रत्येक चुम्बन उसका विस्फोट
देह का प्रत्येक मोड़ भयावह समुद्र की लहर
और दोनों आँखों में होगा
टूटी उल्काओं का विद्रोह

मैं सब भूल जाऊँगा
छोड़ जाऊँगा उस घर को
एक से दिन, पीछे रखकर
भावी ठिकानों की सूचना न रखता
परित्यक्त धूमिल दीवारों पर
अपने को तलाशूँगा जाकर
श्मशान के सीमान्त पर
ऊर्ध्वबाहु ऋषियों के जमघट में
या फिर आसक्तिहीन ब्रह्मचारियों की
नपुंसक स्थिति लिए
जाऊँगा तीर्थ से तीर्थ
दशाश्वमेघ से लेकर मणिकर्णिका तक
मैं रहूँगा ध्यान मग्न
नाभिपद्म कुंडलिनी ब्रह्म के संपर्क में
विसर्जित करूँगा मैं त्रिवेणी में
जीने के अवशेष अवलम्ब सब

मेरे हाथ में होंगे तजे हुए प्रेम-पत्र सूखी
फूल मालाएँ और चित्र मृतकों के
अपने को तलाशता रहूँगा अकेला
अकेला इसी तरह अनेक रास्तों पर
प्रथम सूर्य डूबेगा बीच राह
श्मशान में आकाश का शव
खुले घरों की कतारें रोती होंगी
दुविधाग्रस्त सड़क के दोनों ओर
दिशाएँ चुप होंगी
हवा निबद्ध होगी
कँटीली झाड़ी की सूखी डाल पर

हिचकिचाहट के अंतिम पल में
इसी तरह एकांत में
अपने दोहरे अस्तित्व को
धोखे और आश्वासन का त्रिशंकु बनाते
फिर भेंट होगी तुमसे

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

कई तरह के दिन से। उड़िया से अनुवाद : **विजय लक्ष्मी कानूनगो**

तुम्हारे साथ छह घंटे

तुम्हारे साथ गुजरे हुए छह घंटे
इंजिन की उदास आंखों में समेटकर
चले जाएंगे अंधेरे के एकांत में

समय का कितना अंश छह घंटा
उसे क्या फैलाया जा सकता है
सम्पर्क का संक्षेपण कर
कौन बंद कर सकेगा रेल के डिब्बे में
अंधेरे को शरबिद्ध कर
क्या पेड़ से बांधा जा सकेगा
क्या एक ही पुकार से जगाया जा सकेगा
अबाध्य बादल के फैले द्वीप को
क्या लाया जा सकता है कोहरे के कम्बल के भीतर से
ठंडी रात के घनिष्ठ चंद्रमा को

छह घंटे लौट आएंगे
छुटकारा न पा रही प्रतिध्वनि की तरह
आत्मप्रत्यय में खुद को इकट्ठा कर
छहों ऋतु लौट आएंगी
मृत्यु की अवज्ञा करते हुए
स्नेह की उपत्यका से
रूपकथा के मुहाने पर
स्वप्न के द्वीप में
लहरों के अनुरोध को फलांग

ତମ ସହିତ ଛଅ ଘଣ୍ଟା

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

समुद्र की उन्मुख व्याकुलता में
तुम और कहां जा पाओगे अब
आंखों में बारिश लेकर इस समय
मृत तारों की राख के भीतर से
मैं तुम्हें अनायास ढूंढ निकालूंगा
समेट लूंगा तुम्हें घास पर
स्मृति की बर्फीली ठंड से
मैं तुम्हें तलाश लूंगा
दुस्वप्न की भयावहता से
मेरे अन्वेषण की सभी सीढ़ियाँ
जा पहुंचेंगी तुम्हारी देह के शीर्ष पर
तुम जहां भी पहुंचोगे
वहां मैं होऊंगा तुम्हारी प्रतीक्षा में

हवा के झोंकों से होकर
सुबह दिखने लगेगी
विमूर्त अंधेरा आकर
स्वप्न के साथ फिर से आला परत
कुछ और समय की तलाश में
आखिरी ट्रेन से हम दोनों चल देंगे
पुनः नक्षत्र की रात की ओर

अपना-अपना एकान्त से । उड़िया से अनुवाद : **पूर्णचन्द्र रथ**

महाभारत

छद्मवेश लिए आजीवन
नहीं रहा जाता अज्ञातवास में
लौटकर पुनः आना पड़ता है
अपनी अपनी कर्मभूमि में

तटस्थ रहना संभव नहीं
क्योंकि यहां युद्ध अनिवार्य है
और सभी को
एक न एक पक्ष लेना है

यहां जीवन के महाकाव्य में
सब कुछ लिपिबद्ध है
साम्राज्य और क्षमता के लिए
चुनाव के पासे
भूमिहीनों के लिए भू-सुधार अधिनियम
सुई की नोक के समान मेदिनी
हरिजन बस्ती के लाक्षागृह
खेत और कारखाने का रणक्षेत्र
अभाव और दारिद्र्य का व्यूह
विरोधी दलों का अचूक ब्रह्मास्त्र
और निम्न वर्गों की
विवस्त्र असहायता
कोई नैतिकता नहीं
कूटनीति के विचार-विमर्श में
वृद्ध मांग लेते हैं
यौवन का उत्तराधिकार
मान सम्मान समर्पित हो जाता है
अनुचित प्रतिश्रुतियों को पूरी करने में

सभागृह में बलात्कार होता है
साक्षी अंधा हो जाता है
सतीत्व विभाजित हो जाता है
यहाँ कामांधता सर्वस्वीकृत है
नारी केवल एक गर्भाशय
ठगी नित्य की घटनाएँ
तथा पराक्रम ही अधिकार है

प्रतिदिन के धर्मक्षेत्र में
साइरन की शंखध्वनि
युद्ध प्रारंभ होने की सूचना देती है
सूर्यास्त उसका अंत नहीं
बल्कि पुनः युद्ध की तैयारी है
इस युद्ध का कोई विधि-विधान नहीं
केवल पराजित होना ही अधर्म है।

[illegible]

इतिहास

अब और कोई गवाह नहीं रहा
सारे कृतित्व कैद हैं महलों और गुफाओं में
सफलता के सारे सबूत लिपिबद्ध हैं
कीर्ति स्तंभ और कामशास्त्र में
अमरत्व की चाह अश्मीभूत हो चुकी
प्रशस्ति और अभिलेखों में

यहाँ कोई चेतावनी नहीं
न ही है कोई नीतिशिक्षा
आकस्मिकता यहां सर्वसम्मत है
तर्क-संगति और स्पष्टीकरण की कमी नहीं
सबके लिए यहां खाली है जगह
अज्ञात अध्यायों की अतल गहराइयों में

सभी पंडितों के सफल हाथों से
सारे अनुच्छेद संशोधित हो जाते हैं
महात्मा और महारथी
शीर्षक से उतर आते हैं
पाद टिप्पणियों और परिशिष्टों में
घटनाचक्र का अद्भुत षड्यंत्र
समय के कूड़ेदान से
बिसरी दुरात्मा को उठाकर
फेंक देता है सिंहासन पर
शर्त संधि-पत्र समझौते का चिट्ठा
अंधी गली गुप्त दरवाजा मंत्रणा कक्ष
तीर कमान और परमाणु के बीच
होते हैं देश काल पात्र
अश्वमेध और आणविक यज्ञों में
सत्ता की सीमा निर्णित हो जाती है
उत्तेजना की फिरती छाया तले
सभ्यता की आयु बढ़ती जाती है

बाहर खड़े लोग
ऊब से ताकते हैं
सार्थक घटनाक्रमों की ओर
समर्थ लोगों के हाथों

[illegible]

लिखे जाते हैं नए-नए अध्याय
फिर सबकुछ समर्पित हो जाता है
समय के सर्वभक्षी कीटों के आगे
अनुकृतियां दावा करती हैं मौलिकता का

बिदूषक गंभीर हो
अपने परिहास को दार्शनिक बनाते हैं
सब समा जाता है जीर्ण पृष्ठों में
भविष्य के गवेषक बैठे रहते हैं
अनिर्णीत वर्णमाला हाथों में लिए
सारे घटित दुखांत वृतांत
पुनः संघठित होते हैं प्रहसन बन

गांधी

सत्य की जांच पड़ताल
स्लोगन बन गए
जीवन दर्शन चिपक गया
प्रतिमा की अंधी आंखों में
कृतित्व परिभाषा में सिमटकर रह गया
आत्मा पर अधिकार जमा लिया
सुविधावाद के पण्यों ने

धर्म की स्थापना के लिए
युद्ध घोषित हुआ
शांति बनाए रखने के लिए
जलायी गई
दलितों की बस्ती
सत्य के सबूत ढूंढे गए
कपट शास्त्र की दुहाई देकर
ईश्वर के बंदों को
बहिष्कृत किया गया
सबसे अंतिम व्यक्ति हट गया
और भी पीछे

और कोई सत्यान्वेषी नहीं
किसी को चिंता नहीं साधन की
सबकी आंखें टिकी हैं
खोटे परिणाम पर
हानि-लाभ के चोर बाजार में
चुक गई सच्चरित्रता की शेष पूंजी
साम्राज्यवादी चले गए
नए उपनिवेश की तलाश में
युद्धखोरों के हाथों में
समर्पित हो गया
शांति का पुरस्कार

पुरानी घड़ी नहीं लाँघ सकती
दरिद्रता की सीमारेखा

[illegible]

मोटे चश्मे के कांच से
अब नहीं दीखती
चित्रित सत्य की विभीषिका
संक्षिप्त वस्त्र नहीं ढँक सकता
अखंड क्षमता की अश्लीलता
छड़ी से नहीं रोकी जा सकती
आतंकवादियों की उग्र हिंस्रता

घड़ियाँ मौन और अचल हैं
इतिहास छुट्टी ले लेता है
पत्थर की मूर्ति परिभाषा की श्रृंखला
चलचित्र और जयंती समारोह से निकल
वह लौट जाता है
तेज डग भरता
नये-नये हत्यारों के
उठे हुए बंदूकों की ओर

[illegible]

भय

भय है प्रागैतिहासिक अंधकार
शहर के गली-कूचे में छुपा रहता है
जब ब्रीफकेस में पचास हजार रुपए होते हैं

भय है किंगकांग की औलाद
शैशव की परी-कथा से निकलकर
ताल ठोंकती है कंक्रीट जंगल की छत पर

भय है टेलिफोन की घंटी
कलेजे में हथौड़ी ठकठकाती आती है
असमय की आवाज बन

भय है आधीरात का टेलिग्राम
बंद लिफाफे में आ पहुंचता है
जब प्रियजन हों परदेश

भय है सुनसान दुपहरी में
भारी बूटों की श्रृंखलाबद्ध आवाज
कर्फ्यु के समय नपुंसकों की गलियों में

भय है आपातकाल की खुसुर-फुसुर
खाकी पहन बॉयोनेट लिए दौड़ जाता है
तितर-बितर होते जुलूस की ओर
विरोधी स्लोगन बंद हो जाने पर
भय है मोटर साइकिल का गर्जन
मुखौटा पहन निकलता है मंदिर से
मृत्यु सूची में नाम लिखा होने पर

भय है अपने कलंकित अतीत का गवाह
अप्रत्याशित लौट आता है मन के कालापानी से
पुराने पापों का प्रायश्चित ढूंढ

भय है मृत्यु की सहसा संभावना
आईने से निकलता है समय का शून्य बन
जरा की कुंचित रेखा चेहरे पर उभार
प्रसाधन के आसक्त क्षणों में

भय है संबंधों की सूक्ष्मता
मन मुटाव के रोजमर्रे में लटका रहता है
टूटने की चिरंतन आशंका लिए

ଆହ୍ନିକ

आह्निक

दिन इसी तरह आता है
और चला जाता है
शहर की गलियों में
दिन दर दिन माह दर माह
एक ऋतु से दूसरी ऋतु
सामूहिक रिक्तताओं से होता हुआ

गलती से जल रही बत्ती को निस्तेजकर
सुबह का सूर्य उगता है
चूल्हे के कोयले के धूँए में
अखबार की रक्ताक्त हेडलाइन के पीछे से
चाय के कप पर चमक लाता हुआ

रास्ता किनारे नल पर भीड़ जमाती
सुबह सुन पड़ती है नौ बजे के सॉयरन में
कारखानों में मशीन की आवाज बन
सुबह चढ़ जाती है
ऑफिस के समय की भरी बस में

सुबह पसर जाती है
राशन की दुकान के आगे
पोस्टर पर रंग पोतकर

दोपहर परछाइयों को रोकता है
चौराहे पर ट्राफिक पुलिस बन
हताशा को छिपा देता है
काले चश्में की कृत्रिमता

दुपहरी फिसल जाती है
रिक्शेवाले की पीठ का पसीना बन
दुपहरी उड़ जाती है
रास्ते के सूखे पत्तों में
दुपहरी पिघल जाती है
सड़क के तारकोल में
दुपहरी लौट जाती है
सुनसान गली की शून्यता बन

अपराह्न को टिफिन के डिब्बे में भरे लौटते हैं
ऑफिस और कारखाने के लोग
सांझ उतरती है पान दुकान के आगे
सिनेमा हॉल में लड़की इंतजार करती है
दिन की रोशनी बुझ जाती है
बस्ती की मिलीजुली उसांसों में

बत्ती के खंभे पुनर्जन्म लेते हैं
दिन चला जाता है खिन्न और उचाट
अंधेरे में चुपचाप
रात की पहली ट्रेन से

हिरोशिमा

वह एक अद्भुत सबेरा था
कुछ भी पहले जैसा नहीं रहा
वह दिन-उद्भुत होने के बाद

किस संभावना का विभाव आकाश में
बुद्धि का प्रचंड विस्फोट
या संस्कृति का ज्वलंत हस्ताक्षर ?
विद्वता का प्रकाश प्रज्ञा की ऊष्मा
या प्रगति का उज्ज्वल विज्ञापन ?

या एक नारकीय अदृष्ट
जो भू-भाग को तहस-नहस कर देता है
दूषित कर जाता है आने वाले तमाम कल
पोंछ डालता है जन्म कुंडलियों के शुभ चिह्न
लोगों के भाग्य, बच्चों की मुस्कानें
और समय की सारी उपलब्धियां
एक यांत्रिक ईश्वर आकर
मिटा डालता है सिद्धि और सामर्थ्य

[illegible]

ध्वंसावशेष के नीचे सौंप देता है
समृद्धि और संपन्नता
शापग्रस्त कर जाता है
भविष्य के उत्तराधिकारियों को
स्थापित कर जाता है
एक आत्माहीन पृथ्वी
जहां क्षमता सर्वशक्तिमान है
जहां मानव है सिर्फ
प्रयोगशाला की सांख्यिकी
और इतिहास की पाद टिप्पणी

इस एक ही दिनांत में
निश्छिद्र और निःशेष हो जाता है
केवल एक जनपद ही नहीं
समय के साथ बनी
संपूर्ण पृथ्वी और मानवता
आज की सभ्यता की आयु है केवल चालीस वर्ष

कालाहांडी

मानचित्र को दूर रख दो
अब वहां जाने के लिए
नहीं है जरूरत हेलिकाप्टर की
जहां भी अकाल है
वहीं है कालाहांडी

इंद्र ने मुंह फेर लिया वहां से
नहीं रहे पेड़ों में हरे पत्ते
सारा गांव श्मशान बन गया
जमीन फटी नदी की रेत भी सूखी
हो गई असफल योजनाएँ
सीमारेखा दरिद्रता की खिसकती चली गई

कालाहांडी है जहां भी देखो
पंजर की हड्डियों में
धंसी आंखों के कोटरों में
शरीर ढांपने में असमर्थ चीथड़ों में
बंधक पड़े काँसे के बर्तनों में
फूस के घरों के उधड़े छप्परों में
मिट्टी के दो हांडियों के सर्वस्व में

କଳାହାଣ୍ଡି

ମାନଚିତ୍ର ଏପଟ ଅଲଗା ରଖିଦିଅ
ସେଠାକୁ ଯିବାକୁ ଆଉ
ହେଲିକପ୍ଟରର ଦରକାର ନାହିଁ
ଯେଉଁଠାରେ ଅକାଳ ସେଠାରେ ହିଁ କଳାହାଣ୍ଡି

ଇନ୍ଦ୍ର ସେଠାରୁ ମୁହଁ ଫେରାଇ ନେଲେ
ଗଛରେ ଆଉ ସବୁଜ ପତ୍ର ରହିଲା ନାହିଁ
ସାରା ଗାଁ ମଶାଣି
ଫଟା ଭୂଇଁ ଶୁଖିଲା ନଦୀ ବାଲି
ଯୋଜନା ସଫଳ ହୋଇନଥିଲା
ଦାରିଦ୍ର୍ୟର ସୀମାରେଖା ଘୁଞ୍ଚି ଘୁଞ୍ଚି ଗଲା

ଯେଉଁଠାରେ ଦେଖ କଳାହାଣ୍ଡି
କଙ୍କାଳ ହାଡ଼ରେ ପଶିଯାଇଥିବା ଆଖିରେ
ଦେହ ଘୋଡ଼ା ନ ଯାଉଥିବା ଛିଣ୍ଡା କନାରେ
ବନ୍ଧା ଦିଆଯାଇଥିବା କଂସା ବାସନରେ
କୁଡ଼ିଆ ଘରର ଉଜୁଡ଼ା ଛାତରେ
ଦୁଇଟି ମାଟି ହାଣ୍ଡିର ସର୍ବସ୍ୱରେ

ଏଠାରେ କଳାହାଣ୍ଡି
ଦୁର୍ଭିକ୍ଷର ସମାଚାରରେ
ବିକ୍ରୀ ହେଉଥିବା ଝିଅ ବୋହୂଙ୍କ କାହାଣୀରେ
ସାମାଜିକ ନ୍ୟାୟର ଆଶାରେ
ସମ୍ବାଦର ଶିରୋନାମାରେ
ମା' ମାଟି ଛାଡ଼ି ଯାଉଥିବା
ଶ୍ରମିକମାନଙ୍କ ଦୀର୍ଘ ପଦଯାତ୍ରାରେ

कालाहांडी है हर जगह-
मुफ्त बंटते खाने की जगह कंकालों के मेले में
जहां बच्चे नीलाम होते हैं उन हाट-बाजारों में
वेश्यालय में बिक्री
किशोरी की लंबी सांसों में
गांव की माटी छोड़ जा रहे लोगों की
गुमसुम खामोशियों में

और भी करीब से देखो कालाहांडी को
झूठे वक्तव्यों खोखली घोषणाओं में
अविश्वनीय भाषणों के घड़ियाली आँसू में
कम्प्यूटरी कागज की अतिरिक्त घोषणाओं में
सम्मेलन के प्रकरणों सस्ती सहानुभूतियों में
और योजनाओं के अर्थहीन अंधे वायदों में

कालाहांडी हमारे बिल्कुल पास है-
आत्मा की सामयिक ताड़ना में
विवेक के अकस्मात् दंश में
अंतःकरण के पश्चाताप में
तृप्त नींद के दुःस्वप्न में
असहायता भूख और बीमारी में
खून खराबे की आसन्न संभावनाओं में

इक्कीसवीं सदी की समृद्ध सुरक्षा तक
हम कैसे पहुंच सकते हैं
कालाहांडी को पीछे छोड़

शब्द भेद से। उड़िया से अनुवाद : **राजेन्द्र प्रसाद मिश्र**

जगन्नाथ प्रसाद दास

उड़िया कवि, नाटककार, कहानीकार। जन्म 1936 (उड़ीसा)। पन्द्रह पुस्तकें प्रकाशित जिनमें 'प्रथम पुरुष' 'कई तरह के दिन', 'अपना अपना एकान्त', 'लौटते समय', 'शब्द भेद' (कविता), 'मायावी हिरण', 'सन्यास का रास्ता', 'तीसरी दुनिया', 'मकड़ी का जाला' (कहानी), 'सूर्यास्त', 'सबसे नीचे का आदमी', 'एक दूसरे के लिए' और 'असंगत नाटक' (नाटक) आदि पुस्तकें शामिल हैं।

अंग्रेजी में भी मौलिक लेखन किया है और अनेक रचनाओं के अनुवाद अंग्रेजी और हिन्दी समेत अनेक भारतीय भाषाओं में हुए हैं। आठ पुस्तकें अंग्रेजी में प्रकाशित हैं।

श्री दास कला इतिहास में पी.एच.डी. और उन्होंने उड़ीसा की कला पर अत्यन्त महत्वपूर्ण लेखन किया है।

उन्हें होमी भाभा फेलोशिप प्राप्त हुई है। वे एशियन गेम्स की कला-समिति के सचिव, सोवियत संघ और फ्रांस में आयोजित भारत महोत्सव के परामर्शदाता, राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार निर्णायक मण्डल के सदस्य, अन्तर्राष्ट्रीय बाल फिल्म समारोह के अन्तर्राष्ट्रीय निर्णायक मण्डल के अध्यक्ष और भारत की चिल्ड्रन्स फिल्म सोसायटी की कार्यकारिणी के सदस्य रहे हैं। वे भारत की पोएट्री सोसायटी के अध्यक्ष हैं।

श्री दास भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्य की हैसियत से अनेक महत्वपूर्ण पदों पर रहे हैं।

